खंडी खांडी रडी रडावी, दुख जगवतां दीठा घणा।
जाग्या पछी ज्यारे जोइए, त्यारे बंनेमां नहीं मणा।। १३ ।।

खण्डनी करके किसी को कुचलते हैं। रुलाकर दोनों को दुःख होता है। होश में आकर जब देखते हैं तो दोनों में कोई कम नहीं है, यह दिखाई पड़ता है।

साथ मांहें हांसी थासे, रस रामत एणी रंग।
पूर विना तणाणियों, कोई आडी थाय अभंग।। १४ ।।

जो सुन्दरसाथ, बिना माया के माया में बहे जा रहे थे, अर्थात् अपने धनी का जो विश्वास छोड़े बैठे थे और माया में खिंचे जा रहे थे, वह सुन्दरसाथ अखण्ड वाणी से जागृत होकर आपस में खुशियां मनाएंगे। ऐसी जागनी रास की लीला होगी।

हरखे हांसी हेतमां, करसे साथ कलोल।
माया मांगी ते जोई जोपे, रामत झलाबोल।। १५ ।।

सुन्दरसाथ ने जो माया मांगी थी, उसमें अच्छी तरह से डूबकर देख लिया। अब जागृत होने पर बड़े खुश होंगे और आपस में विनोद की बातें (खेल की बातें) करेंगे।

वृख ऊभो मूल विना, तेहेनूं फल वांछे सहु कोय।
वली वली लेवा दोडहीं, ए हांसी एणी पेरे होय।। १६ ।।

यह ब्रह्माण्ड बिना जड़ के खड़ा है और इसका फल सब चाहते हैं। बार-बार फल लेने दौड़ते हैं। फल होता ही नहीं तो कहां से मिले? यही हांसी (हंसी) का खेल है।

अछता बंध छूटे नहीं, पेरे पेरे छोडे तोहे।
ए स्वांग सहु मायातणो, साथ बांध्यो रामत जोए।। १७ ।।

न दिखने वाले माया के बंध (रिश्तेदारियां और इच्छाएं) छूटते नहीं हैं। पल्ला तो बार-बार छुड़ाते हैं तो भी नहीं छूटता। ऐसा माया का यह ढोंग है। सुन्दरसाथ ऐसे खेल को देखने के लिए फंस गया है।

।। प्रकरण ।। ११ ।। चौपाई ।। ३७१ ।।

जागणीनूं प्रकरण

हवे जागी जुओ मारा साथजी, ए छे आपण जोग।
त्रण लीला चौथी घरतणी, चारेनों एहेमां भोग।। १ ।।

हे साथजी! जागृत होकर देखो। यह खेल हमारे देखने लायक है। ब्रज, रास, नौतनपुरी की तीन लीला तथा चौथे घर के सुख की लीला—इन चारों का आनन्द इस जागनी लीला में मिलता है।

कह्या न जाय सुख जागणीना, सत ठोरना सनेह।
आ भोमना जेहेवुं केहेवाय, कांइक प्रकासूं तेह।। २ ।।

जागनी के सुख का वर्णन कहने में नहीं आता, क्योंकि इसमें अखण्ड परमधाम का प्यार मिलता है। यह भूमि जैसी कही जाती है, उसका थोड़ा वर्णन करती हूं।

हवे जगवुं जुगते करी, भाजूं भरमना बार।
रंगे रास रमाडी तमारा, सुफल करूं अवतार।। ३ ।।

अब तुम्हारे संशय बड़े उपाय से मिटाकर जगाऊंगी। जागनी रास के सुख देकर तुम्हारा आना सार्थक बना दूंगी (लाभदायक Profitable)।

हवे दुख न दऊं फूल पाखंडी, सीतल द्रष्टे जोऊं।
सुख सागर मां झीलावी, विकार सघला धोऊं।। ४ ।।

श्री इन्द्रावतीजी कहती हैं, हे साथजी! अब इस जागनी के ब्रह्माण्ड में एक फूल की पंखुड़ी मारने से जितनी चोट लगती है, उतना भी दुःख तुम्हें नहीं दूंगी। सदा नजरे करम से देखूंगी तथा तुम्हारे सब विकार हटाकर सुख के सागर का आनन्द दूंगी।

आगे कलकलीने कह्यूं रे सखियो, तोहे न गयो विकार।
कठण सही तमे खंडनी, वचन खांडा धार।। ५ ।।

हे सुन्दरसाथजी! आगे खण्डनी करके (कलकलाकर, बिलखकर) कहती थी, फिर भी तुम्हारे विकार नहीं हटे। तलवार की धार के समान कठोर खण्डनी के वचनों को तुमने सहन किया।

ते वचन घणूं साले मूने, कठण तमने जे कह्या।
मारी वासनाओने निद्रा मांहें, मूल घर विसरी गया।। ६ ।।

वह कठिन खण्डनी के वचन जो मैंने तुम्हें कहे थे, आज मुझे खटक रहे हैं। मेरी परमधाम की आत्माएं इस भवसागर में अज्ञानवश परमधाम को भूल गई हैं।

हवे विन ताए गालूं तमने, करूं ते रस कंचन।
कसनो रंग एवो चढावुं, बेहू पेरे करूं धंन धंन।। ७ ।।

साथजी! अब तुमको बिना खण्डनी का ताव दिए निर्मल कर कंचन का रूप बना दूंगी। तुम्हारे अन्दर वाणी का इतना बल भर दूंगी कि कोई यहां तुम्हें परखेगा तो खरे उतरोगे। जिससे यहां भी धन्य-धन्य होगे और परमधाम में भी (अर्थात् रहनी ही सब कुछ है)।

जाणूं साथजी विदेस आव्या, दुख दीठां कै भांत।
ते माटे सुख आंणी भोमे, देवानी मूने खांत।। ८ ।।

हे साथजी! मैं जानती हूं कि सुन्दरसाथ ने विदेश (माया का खेल) में आकर अनेक तरह के दुःख देखे हैं, इसीलिए इसी ब्रह्माण्ड में सुन्दरसाथ को सुख देने की मेरी इच्छा है।

खीजे वढे वासना न जागे, जगव्यानी जुगत जुइ।
आप जाग्यानी जुगत आपूं, त्यारे केम रहे वासना सुइ।। ९ ।।

चिढ़कर व अपमानित कर आत्माएं जागृत नहीं होतीं। इनको जगाने का तरीका अलग है। मैं जिस प्रकार जागृत हुई वही हकीकत (ढंग) अपनाती हूं, ताकि कोई आत्मा सोती न रह जाए।

खंडी खांडी खीजिए, जागे नहीं एणी भांत।
आपोपूं ओलखाविए, साख पुराविए साख्यात।। १० ।।

खण्डनी से अपमानित करके तथा खीजकर जागनी नहीं होती। उसको धनी की पहचान कराओ और साक्षात् प्रमाण देकर समझाओ, तभी जागनी होगी।

हवे जगावी सुख दऊं संभारणू, करों आप आपणी वात।
साथ सहु अम पासे बेसी, करों सहु विख्यात।। ११ ।।

अब तुम्हें जगाकर सुख देने के लिए अपनी और आपकी बातों की याद दिलाती हूं। जिससे सब सुन्दरसाथ को अपने पास बिठाकर सब हकीकत जाहिर कर दूंगी।

आगे आवेस मू कने धणीतणो, वली निध बीजी दीधी।
निसंक निद्रा उडाडी, साख्यात बेठी कीधी।। १२ ।।

पहले मेरे पास केवल धनी का आवेश ही था। अब दूसरी जागृत बुद्धि और भी न्यामत (शक्ति) राज जी महाराज ने दे दी है, जिससे मेरे संशय मिटाकर साक्षात् धनी के सामने बिठा दिया है।

हवे रेहेवाय नहीं खिण अलगां, जागणी एम जाणो।
अहंमेव जाग्यो धामनो, अम मांहें एह भराणो।। १३ ।।

अब एक क्षण भी हम अलग नहीं होंगे। जागनी इसी को समझो। अब हमारे अन्दर 'मैं परमधाम की हूं' यह भावना आ गई है और अच्छी तरह से मन में दृढ़ता आ गई है।

पहली जोगमाया थई रासमां, तेहेनो ते अति अजवास।
पण आ जे थासे जागणी, तेहेनों कह्यो न जाय प्रकास।। १४ ।।

पहले योगमाया में रास खेली। वहां थोड़ी सी सुध आई (कि आप मेरे धनी हैं पर घर की सुध नहीं हुई), पर अब इस प्रकार की जागनी होगी कि इसके ज्ञान का प्रकाश वर्णन करने में नहीं आता।

हवे अधखिण अलगां, साथ विना में न रेहेवाय।
आ लेहेर जे मायातणी, साथ ऊपर में न सेहेवाय।। १५ ।।

अब सुन्दरसाथ के बिना आधे पल के लिए भी मुझसे रहा नहीं जाता। अब यह माया की थोड़ी-सी भी बेहोशी जो सुन्दरसाथ पर आती है, वह भी मैं सहन नहीं कर सकती।

साथजी आ भोमना, सुख आपीस तमने अपार।
हेते ते हंससो हरखमां, तमे नाचसो निरधार।। १६ ।।

हे साथजी! इस भूमि का भी तुम्हें बेशुमार (अनगिनत) सुख दूंगी। तुम बड़े प्रेम से खुशी में हंसोगे तथा उमंग में नाचोगे।

मारा प्राणना प्रीतम छो, अंगनानी आतम टोली।
कलपया मन रामत जोतां, नाखूं ते दुखडा घोली।। १७ ।।

तुम मेरे प्राण के प्रीतम हो। श्री राजजी महाराज की अंगना श्यामा महारानी की जोड़ीदार। खेल देखने में तुम्हें बहुत दुःख हुआ है। उस दुःख को मैं मिटा देती हूं।

करमाणा मुखडा मनना, ते तमारा हूं नव सहूं।
ए दुख सुखनों स्वाद देसे, तोहे दुख हूं नव दऊं।। १८ ।।

हे साथजी! मैं तुम्हारे कुरमाने (मुरझाया) मुख नहीं देख सकता। यह दुःख-सुख में स्वाद देगा फिर भी तुम्हें दुःख नहीं दूंगा।

सत सुखमां सुख देसे, आ भोमना दुख जेह।
तमे हंससो हरखमां, रस देसे दुखडा एह।। १९ ।।

इस भूमि के दुःख सच्चे परमधाम के सुख की लज्जत देंगे। यह दुःख जो तुम देख रहे हो इसका सुख तुम घर परमधाम में हंसकर लोगे।

अमें उपाई आनन्द माटे, रामत तो तमे मांगी।
रामतना सुख दऊं साचा, चालसूं आंहीं जागी।। २० ।।

हे साथजी! तुमने खेल मांगा और मैंने तुम्हें आनन्द देने के वास्ते खेल दिखाया। अब इस खेल का सच्चा सुख देता हूं। फिर जागकर घर चलेंगे।

सेहेजल सुखमां रेहे सदा, अलप नथी असुख।
तमें सुखनों स्वाद लेवा ने, मांगी रामत दुख।। २१ ।।

हम परमधाम में सदा ही अखण्ड सुख में रहे। जहां दुःख का नामोनिशान नहीं था। इसलिए सुख का स्वाद लेने के लिए दुःख का खेल मांगा।

रामत मांगी दुखनी, त्यारे कह्यूं अमे एम।
दुखनी रामत तमने, देखाडूं अमे केम।। २२ ।।

जब आपने दुःख का खेल मांगा, तब मैंने यह कहा था कि हे रूहो! मैं तुम्हें दुःख का खेल कैसे दिखाऊं?

दुख ते केमें दऊं नहीं, तो रामत केम जोवाय।
खांत खरी जोया तणी, तेहेनो ते एह उपाय।। २३ ।।

हे साथजी! मैं तुम्हें दुःख तो किसी तरह से दे नहीं सकता तो दुःख का खेल कैसे दिखाऊं? जिसे देखने की बड़ी इच्छा है उसका तो यही इलाज (तरीका) है।

अमे रामत जाणी घरतणी, जेम रमूं छूं सदाय।
अमें ऊभा जोइसूं, रामत एणी अदाय।। २४ ।।

अब सुन्दरसाथ कहते हैं, धनी! हमने जाना, यह खेल भी वैसा ही होगा जैसा हम सदा परमधाम में खेलते थे और हम खड़े-खड़े इस खेल को भी देखेंगे।

वस्तोगते दुख कांई नथी, जो पाछी वालो द्रष्ट।
जुओ जागी वचने, तो नथी कांईए कष्ट।। २५ ।।

यदि पीछे परमधाम की तरफ नजर करके देखो तो दुःख हकीकत में कुछ भी नहीं है। वाणी से विचार कर देखो तो कष्ट भी कुछ नहीं है, अर्थात् हमारे मूल तन परमधाम में हैं। हम यहां हैं ही नहीं तो कैसा दुःख और कैसा कष्ट।

लागसो जो दुखने, तो दुख तमने लागसे।
मूल सुख संभारसो, तो दुख पाछा भागसे।। २६ ।।

यदि तुम माया रूपी दुःख को लगोगे तो यह दुःख तुम्हें चिपटेंगे। यदि मूल परमधाम के सुखों को याद करोगे तो सारे दुःख दूर हो जाएंगे।

द्रष्ट वाली जो जुओ, तो दुख कांइए नथी।
रामतना रंग करसो आंही, विनोद वातों मुख थकी।। २७ ।।

नजर फिराकर देखो तो यह दु:ख कुछ भी नहीं है। इस संसार में भी खेल के सुख लोगे और खुशी की बातें करोगे (जब तुम्हारा चित्त परमधाम में लगा रहेगा)।

सागर सुखमां झीलतां, जिहां दुख नहीं प्रवेस।
ते माटे तमे दुख मांग्या, ते देखाड्या लवलेस।। २८ ।।

श्री राजजी महाराज कहते हैं कि तुम घर (परमधाम) में सदा सुख के सागर में रहते थे। जहां दु:ख का नामोनिशान नहीं है, इसलिए तुमने दु:ख मांगा और मैंने थोड़ा-सा तुम्हें दिखाया।

पोढ्या भेलां जागसे भेलां, रामत दीठी सहु एक।
वातो ते करसूं जुजवी, विध विधनी विसेक।। २९ ।।

हम एक साथ मूल मिलावा में फरामोशी में आए और एक साथ ही खेल देखकर सावचेत (सावधान) होंगे। सबने मिलकर खेल तो एक ही देखा है पर बातें जुदा-जुदा करेंगे।

दुख तमारा नव सहुं, ते चोकस जाणो चित।
ए दुख ते सुख घणा देसे, रंग रस ए रामत।। ३० ।।

हे सुन्दरसाथजी! यह तुम पक्का जानो कि मैं तुम्हारा दु:ख सहन नहीं कर सकता। यह खेल का दु:ख परमधाम में इससे भी ज्यादा सुख देगा। इस खेल का रस और आनन्द घर में ही मिलेगा।

साथने आ भोमना, सुख देवानो हरख अपार।
रंगे रास रमाडीने, भेलां जागिए निरधार।। ३१ ।।

सुन्दरसाथ को इस भूमि का सुख देने के लिए मेरे मन में बहुत चाहना है। सुन्दरसाथ को जागनी रास का खेल दिखाकर इकट्ठा परमधाम में जागेंगे।

हवे ल्यो रे मारा साथजी, आ भोमना जे सुख।
सही न सकूं तमतणा, जे दीठां तमे दुख।। ३२ ।।

हे सुन्दरसाथजी! अब इस भूमि के सुख लो। जो दु:ख तुमने देखे हैं, वह मैं सहन नहीं कर सकता।

लेहेर लागे तमने मोहनी, ते हवे हूं नव सकूं सही।
खंडनी पण नव करूं, जाणू दुखवुं केम मुख कही।। ३३ ।।

तुम्हें इस संसार में माया का जरा-सा भी दु:ख हो, मैं सहन नहीं कर सकता। तुम्हारी खण्डनी भी अपने मुख से नहीं करूंगा। यह समझकर कि अपने मुख से कहकर तुम्हें क्यों दु:खी करूं?

हवे कसोटी केम दऊं तमने, करमाणां मुख ते नव सहूं।
ते माटे वचन कठण, मारा वालाओने केम कहूं।। ३४ ।।

हे साथजी! तुम्हारे मुरझाए मुख को मैं नहीं सहन कर सकता, तो तुम्हारी (कसनी) परीक्षा लेकर तुम्हें दु:खी क्यों करूंगा? इसलिए अपने प्यारों को ऐसे कठिन वचन क्यों कहूं?

बांहे ग्रहीने तारूं तमने, जेम लेहेर न लगे लगार।
सुखपालमां सुखे बेसाडी, घेर पोहोंचाडूं निरधार।। ३५ ।।

तुम्हारी बांह पकड़कर तुम्हें घर ले चलूंगा जिससे तुम्हें जरा भी माया का कष्ट न हो। सुखपाल में बिठाकर निश्चित ही घर पहुंचा दूंगा।

अंगथी आपी उपजावूं, रस प्रेमना प्रकार।
प्रकास पूरण करी सेहेजे, टालूं ते सर्वे विकार।। ३६ ।।

मैं अपने तन में भरपूर प्रेम पैदा कर तुम्हें दूंगा। पूरी वाणी का ज्ञान देकर तुम्हारे सब दोष दूर कर दूंगा।

अंग आप्या विना आवेस, प्रेम प्रगट केम थाय।
आवेस दई करूं जागणी, जेम मारा अंगमां समाय।। ३७ ।।

हे साथजी! समर्पित हुए बिना (तन, मन, जीव न्योछावर किए बिना) धनी का आवेश कैसे मिलेगा? बिना आवेश के प्रेम कैसे होगा? अब मैं अपना आवेश देकर सुन्दरसाथ को जगाऊंगा ताकि सुन्दरसाथ मुझमें लीन हो जाएं।

हवे सहु भेलां तो चालिए, जो अंग मांहेंथी देवाय।
जोगमाया तो थाय तमने, जो सांचवटी वटाय।। ३८ ।।

हे साथजी! हम सब इकट्ठे तभी चलेंगे जब मेरा आवेश सबको मिलेगा। आपका जीव तब योगमाया में अखण्ड होगा, जब तारतम वाणी जागृत बुद्धि तुमको मिल जाएगी।

हवे आवतां दुख वासनाओने, तिहां आडो दऊं मारो अंग।
सारी पेरे सुख दऊं तमने, मांहें न करूं वचे भंग।। ३९ ।।

अब सुन्दरसाथ को दुःखी होता देखकर मैं अपना कन्धा लगाकर दुःख झेलूंगा और हर तरह से तुमको ऐसा सुख देने में कमी नहीं रखूंगा।

ए लीला करूं एणी भांते, तो रास रंग रमाय।
विध विधना सुख दऊं विगते, विरह वासनाओं नो न खमाय।। ४० ।।

यह लीला इसी तरह से करूंगा तो जागनी रास के खेल में आनन्द आएगा। तरह-तरह के सुख अनेक तरीकों से दूंगा, क्योंकि आत्माओं की जुदाएगी सहन नहीं कर सकता।

जागणीना सुख दऊं तमने, रास मांहें रमाडूं रंग।
सततणा सुख केम आवे, जिहां न दऊं मारूं अंग।। ४१ ।।

हे साथजी! जागनी के ब्रह्माण्ड में मैं तुमको सुख दूंगा और वाणी के रहस्य समझाकर तुम्हें आनन्दित करूंगा। जब तक मैं अपना आवेश नहीं दूंगा तब तक परमधाम के सच्चे सुख कैसे आएंगे?

अंग आपी अंगनाने, अंगना भेलूं अंग।
पास दऊं पूरो प्रेमनो, करूं ते अविचल रंग।। ४२ ।।

अपनी अंगनाओं को मैं अपना आवेश देकर सुन्दरसाथ को इकट्ठा करूंगा और प्रेम का ऐसा रंग चढ़ाऊंगा, जो पक्का होगा।

असतथी अलगां करूं, सतसूं करावुं संग।
परआतमासूं बंध बांधूं, जेम प्रले न थाय कहिए भंग।।४३।।

सुन्दरसाथ को झूठी माया से अलग करके सच्चे प्रेम तथा धाम की पहचान करा दूंगा और परात्म से मिला दूंगा जिससे नाता कभी न टूटे।

धणिए जगावी मूने एकली, हूं जगवुं बांधा जुथ।
दुखनी भोम दूथी घणी, ते करी दऊं सत सुख।।४४।।

धनी ने मुझे अकेली जगाया और मैं जुत्थ के जुत्थ (यूथ के यूथ) को जगाऊंगी। यह दुःख की भूमि बड़ी कठिन है। मैं इसे अखण्ड सुख से भर दूंगी।

साथ करूं सहु सरखो, तो हूं जागी प्रमाण।
जगाडी सुख दऊं धामना, पोहोंचाडूं मूल एधाण।।४५।।

श्री इन्द्रावतीजी कहती हैं सब सुन्दरसाथ को अपने समान बना लूंगी। तभी मैं जागी कहलाऊंगी। सुन्दरसाथ को परमधाम के पच्चीस पक्षों की पहचान कराके (जगाकर) सुख दूंगी।

आवेस जेहेने में दीठां पूरा, जोगमायानी निद्रा तोहे।
पण जे सुख दीसे जागतां, अम विना न जाणे कोय।।४६।।

श्री इन्द्रावतीजी कहती हैं मैंने जिन श्री देवचन्द्रजी के अन्दर पूर्ण आवेश देखा था, उनमें भी योगमाया की नींद थी, पर जो सुख जागने पर मिलता है वह मेरे बिना कोई नहीं जानता।

जे जागी बेठा निज धाममां, तेहेने आवेसनों सूं कहिए।
तारतम तेज प्रकास पूरण, तेणे सकल विधे सुख लहिए।।४७।।

जो परमधाम में जाग बैठा हो उनके आवेश का तो कोई पारवार ही नहीं होना चाहिए। उन्हें तो तारतम ज्ञान के पूरे प्रकाश की जानकारी होनी चाहिए। उनको सब तरह के सुख होने चाहिए।

आवेसने नहीं अटकल, पण जागवुं अति भारी।
आवेस जागवुं बंने तारतमें, जो जुओ जुगत विचारी।।४८।।

आवेश के स्वरूप को यह पता नहीं है कि जागनी का काम कितना भारी है (कठिन है)। यदि विवेक से (गहरी सोच से) देखो, तो आवेश तथा जगाने की शक्ति दोनों तारतम में (राजजी के स्वरूप में) हैं।

पैया सहुना काढे प्रगट, नही तारतमने अटकल।
आवेस जागवुं हाथ धणीने, एह अमारू बल।।४९।।

संसार के सब ज्ञानियों का बताया रास्ता अनुमान का है। तारतम ज्ञान सबके भेद खोलता है और सीधा रास्ता दिखाता है। आवेश और जगाने की शक्ति धनी ने अपने हाथ में रखी है, जिसे उन्होंने मुझे बख्शी है, वही मेरी ताकत है।

तारतमना सुख साथ आगल, विध विधना वाले कीधां।
पछे ए सुख एकली इंद्रावतीने, दया करी धणीए दीधां।।५०।।

तारतम के सुख सुन्दरसाथ के सामने धनी ने तरह-तरह से कहे। पीछे यह सब सुख अकेली श्री इन्द्रावतीजी को धनी ने दया करके दिए।

धंन धंन धणी धंन तारतम, धंन धंन सखी जे ल्यावी।
धंन धंन सखी हूं सोहागणी, मुझ मांहें ए निध आवी।।५१ ।।

धन्य-धन्य हैं धनी। धन्य धन्य है तारतम। श्यामाजी (सुन्दरबाई) धन्य-धन्य हैं, जो तारतम लायी हैं। हे सखी! मैं सुहागिन भी अहोभाग्य हूं, जो मेरे अन्दर यह न्यामत तारतम ज्ञान और आवेश आया।

मूं माटे ल्याव्या धणी धामथी, बीजा कोणे न थयूं एनूं जाण।
में लीधूं पीधूं विलसियूं, विस्तारियूं प्रमाण।।५२ ।।

मेरे लिए धनी परमधाम से दोनों न्यामतें लाए हैं। दूसरे किसी को इसकी जानकारी भी नहीं हुई। मैंने यह न्यामत ली। इसे पिया और आनन्द लिया। अब प्रमाणों के साथ इनको जाहिर करूंगी।

ए वाणी साथ मांहें केहेवाणी, पण केने न कीधो विचार।
पछे दया करीने दीधूं वाले, अंग इंद्रावतीने आ वार।।५३ ।।

यह वाणी सुन्दरसाथ में सुनाई गई, पर किसी ने भी इस पर विचार नहीं किया। पीछे श्री राजजी ने दया करके श्री इन्द्रावतीजी को यह न्यामतें दीं।

घणूं धन ल्याव्या धणी धामथी, बहु विधना प्रकार।
ते धन सर्वे में तोलियूं, तारतम सहुमां सार।।५४ ।।

धाम धनी परमधाम से बहुत-सी न्यामतें लाए हैं। उन सबको मैंने अच्छी तरह देखा, समझा, तो पता चला कि तारतम ही सबसे श्रेष्ठ है।

तारतमनो बल कोई न जाणे, एक जाणे मूल सरूप।
मूल सरूपना चितनी वातो, तारतममां कई रूप।।५५ ।।

तारतम का बल सिवाय धाम धनी के दूसरा कोई नहीं जानता, क्योंकि मूल स्वरूप (धाम धनी) के चित्त की बातों को कई तरीके से तारतम वाणी में बताया गया है।

साख्यात सरूप इंद्रावती, तारतमनो अवतार।
वासना हसे ते वलगसे, ए वचन ने विचार।।५६ ।।

श्री इन्द्रावतीजी साक्षात् श्री राजजी महाराज की अवतार हैं जो तारतम के लाने वाले हैं। जो परमधाम की आत्माएं होंगी वह इन वचनों से विचार कर श्री इन्द्रावतीजी का पल्लू पकड़ लेंगी (उनको ही साक्षात् धाम धनी मानेंगी)।

सरूप साथनी ओलखाण, तारतममां अजवास।
जोत उद्योत प्रगट पूरण, इंद्रावतीने पास।।५७ ।।

श्री राजजी महाराज के स्वरूप की तथा सुन्दरसाथ की पहचान तारतम की वाणी से होती है, जिसका पूर्ण ज्ञान श्री इन्द्रावतीजी के पास है।

वासनाओंनी ओलखाण, वाणी करसे तेणे ताल।
निसंक निद्रा उडी जासे, सांभलतां तत्काल।।५८ ।।

इस तारतम वाणी से परमधाम की आत्माओं की तुरन्त पहचान हो जाएगी। इसको सुनते ही, बिना सन्देह के आत्माएं धनी की पहचान कर जागृत हो जाएंगी।

एक लवो सुणे जो वासना, ते संग न मूके खिण मात्र।
ते थाय गलितगात्र अंगे, प्रगट दीसे प्रेम पात्र।।५९।।

एक वचन तारतम वाणी का सुनते ही परमधाम की आत्माएं एक पल भी धनी के चरणों से अलग नहीं होंगी। वह इन वचनों से अपने तन से एक रस हो जाएंगी और वह रहनी से साफ नजर आएंगी कि यह परमधाम की आत्मा हैं।

ए वाणी सांभलतां जेहने, आवेस न आव्यो अंग।
ते नहीं नेहेचे वासना, तेनो करूं जीव भेलो संग।।६०।।

इस वाणी को सुनकर भी जिसको आवेश नहीं आया, वह निश्चय ही परमधाम की वासना नहीं है और वह माया का जीव है।

वासना जीवनो वेहेरो एटलो, जेम सूरज दृष्टे रात।
जीव तणो अंग सुपननों, वासना अंग साख्यात।।६१।।

वासना और जीव का इतना ही फर्क है, जैसे दिन और रात का। जीव का अंग स्वप्न का है और आत्माओं के तन साक्षात् परमधाम में हैं।

वली वेहेरो वासना जीवनो, एना जुजवा छे ठाम।
जीवतणो घर निद्रा मांहें, वासना घर श्री धाम।।६२।।

फिर से आत्मा और जीव की हकीकत देखो। इन दोनों के ठिकाने अलग-अलग हैं। जीव का घर निराकार है और वासना (आत्मा) का घर परमधाम है।

न थाय नवो न लोपाय जूनो, श्री धाम एणी प्रकार।
घटे वधे नहीं पत्र एके, सत सदा सर्वदा सार।।६३।।

परमधाम में कोई चीज नई नहीं होती है और न ही कोई पुरानी होकर नष्ट होती है। परमधाम में एक पत्ता भी घटता बढ़ता नहीं है। वह सत (अखण्ड) वस्तु है और सदा एक-सा ही रहता है।

जदिप संग थयो कोई जीवनो, तेनो न करूं मेलो भंग।
ते रंगे भेलूं वासना, वासना सतनो अंग।।६४।।

यदि कोई माया का जीव भी हमारे साथ आ गया है तो उसका साथ भी नहीं छोडूंगी। आत्माओं के जीव के समान इन्हें भी आनन्द में रखूंगी। वासनाएं (आत्माएं) श्री राजजी का अंग होने से परमधाम जाएंगी।

तारतम तेज प्रकास पूरण, इंद्रावतीने अंग।
ए मारूं दीधूं में देवाय, हूं इंद्रावतीने संग।।६५।।

श्री इन्द्रावतीजी के अन्दर तारतम वाणी का पूर्ण ज्ञान है। श्री राजजी कहते हैं कि यह मैंने दिया है, मैंने दिलवाया और मैं इन्द्रावतीजी के अन्दर साक्षात् विराजमान हूं।

इंद्रावतीने हूं अंगे संगे, इंद्रावती मारू अंग।
जे अंग सोंपे इंद्रावतीने, तेने प्रेमें रमाडूं रंग।।६६।।

धाम धनी कहते हैं कि मैं श्री इन्द्रावतीजी के तन में बैठा हूं। अब श्री इन्द्रावतीजी मेरा ही तन हैं। इसलिए जो भी श्री इन्द्रावतीजी को मेरा ही स्वरूप जानकर समर्पण करेगा उसको प्रेम का आनन्द दूंगा।

बुध तारतम भेला बंने, तिहां पेहेले पधारया श्री राज।
अंग मारे अजवास करी, साथना सारया काज।। ६७ ।।

जहां श्री राजजी महाराज विराजमान हैं वहीं पर जागृत बुद्धि और तारतम दोनों इकट्ठे होंगे। श्री इन्द्रावतीजी कहती हैं कि इन दोनों ने मेरे तन में आकर ज्ञान का उजाला किया और सुन्दरसाथ के कार्य सिद्ध हो गए।

सुख दऊं सुख लऊं, सुखमां ते जगवुं साथ।
इंद्रावतीने उपमा, में दीधी मारे हाथ।। ६८ ।।

श्री राजजी महाराज कह रहे हैं कि श्री इन्द्रावतीजी के तन में बैठकर सुन्दरसाथ को सुख देता हूं और सुन्दरसाथ का सुख लेता हूं। आनन्द के साथ सुन्दरसाथ को मैं ही जगा रहा हूं। श्री इन्द्रावतीजी को मैंने ही अपना नाम "प्राणनाथ" दिया है।

में दया तमने कीधी घणी, जो जुओ आंख उघाडी।
नहीं जुओ तोहे देखसो, छाया निसरी ब्रह्मांड फाडी।। ६९ ।।

धाम धनी कह रहे हैं, हे साथजी! आंख खोलकर देखो तो मैंने तुम्हारे ऊपर बहुत कृपा की है। नहीं देखोगे तो भी देखना पड़ेगा, क्योंकि यह पहचान (ज्ञान) इस ब्रह्माण्ड के परे बेहद में पहुंच गई है।

मूलगी आंखां दऊं उघाडी, जेम आडी न आवे मोह सृष्ट।
सत सुखने ओलखावुं, जेम घर आवे द्रष्ट।। ७० ।।

परमधाम में जब सुन्दरसाथ को जगा दूंगा तब भवसागर से दृष्टि हट जाएगी। तब सच्चे सुख की पहचान करा दूंगा और यहीं बैठे-बैठे परमधाम नजर आने लगेगा।

तारतमनो जे तारतम, अंग इंद्रावती विस्तार।
पैया देखाड्या सारना, तेने पारने वली पार।। ७१ ।।

तारतम का जो तारतम है, (अर्थात् क्षर से परमधाम तक का ज्ञान तथा इसका तारतम परमधाम के अन्दर, खिलवत, वाहिदत तथा पच्चीस पक्ष का ज्ञान) पूरा का पूरा श्री इन्द्रावतीजी के तन में है, जो निराकार के पार का रास्ता दिखाता है और फिर पार के भी पार अर्थात् हद पार बेहद, बेहद पार अक्षर और अक्षर पार अक्षरातीत की पहचान कराता है।

ब्रह्मांड बंने अखंड कीधा, तेमां लीला अमारी।
ब्रह्मांड त्रीजो अखंड करवो, ए लीला अति भारी।। ७२ ।।

ब्रज और रास के जो दो ब्रह्माण्ड पहले अखण्ड किए हैं, उनमें हमारी ही लीला है। अब तीसरा ब्रह्माण्ड भी अखण्ड करना है, जिसकी लीला बहुत भारी है।

त्रण लीला माया मधे, अमे प्रेमे मांणी जेह।
आ लीला चौथी मांणता, अति अधिक जाणी एह।। ७३ ।।

हमने माया के बीच तीन लीला (ब्रज, रास, नौतनपुरी) प्रेम से देखी। यह चौथी जागनी की लीला देखने में अधिक ज्ञान का पता चला।

एक सुख सुपनना, बीजा जागतां जे थाय।
पहेली त्रण लीला आ चौथी कही, सुख अधिक एणी अदाय।। ७४ ।।

जैसे ब्रज की लीला सपने की थी और दूसरी रास की लीला जागृत अवस्था में थी, उसी तरह इस ब्रह्माण्ड में तीसरी लीला नौतनपुरी के सपने की तथा चौथी जागनी के जागृत अवस्था की है। इसका सुख सबसे अधिक है।

पेहेलूं द्रष्टे जे अमने आवयूं, तेटला ते मांहें अजवास।
ते अजवास मांहें अमें रमूं, बीजा लोक सहुनो नास।। ७५ ।।

पहले ब्रज में हम आए और जितनी भूमि पर हमारी लीला (ब्रज, गोकुल, मथुरा) हुई, केवल उतने को अखण्ड किया। बाकी संसार का प्रलय कर दिया।

हवे चौदे लोक चारे गमां, प्रकास करूं साथ जोग।
जीव सहु जगवी करी, टालूं ते निद्रा रोग।। ७६ ।।

अब चौदह लोकों में चारों तरफ ज्ञान का प्रकाश फैलाकर सब जीवों को जागृत कर माया का अन्धकार मिटाएंगे।

अमें प्रगट थईने पाधरा, चालसूं सहुए घेर।
वैराट वली ने थासे सवलो, एक रस एणी पेर।। ७७ ।।

अन्धकार मिटाकर अपने घर जाएंगे। सब वैराट को हमारी पहचान हो जाएगी और इस तरह से सब एक रस हो जाएगा।

हवे ए वचन केम प्रगट पाडूं, पण मारे करवो सहु एक रस।
वस्त देखाड्या विना, वैराट न आवे वस।। ७८ ।।

यह वचन कहने तो नहीं थे, परन्तु सबको एक रस करना है। यह अपनी पहचान कराए बिना सम्भव नहीं है। पहचान के बाद ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वश में आएगा।

वैराट वस कीधां विना, अखंड थाय केम एह।
अमें रामत जोई इछा करी, मांहें भंग थाय केम तेह।। ७९ ।।

ब्रह्माण्ड को वश में किए बिना अखण्ड कैसे करेंगे? हमने अपनी इच्छानुसार खेल देखा है। इसलिए यह ब्रह्माण्ड कैसे नष्ट होगा, अर्थात् इसको अखण्ड कर देंगे।

अनेक थासे आगल, आ वाणीनो विस्तार।
लवलेस कांईक कहूं थावा, अखंड आ संसार।। ८० ।।

इस वाणी का आगे चलकर बहुत विस्तार होगा। मैंने तो थोड़ा-सा इशारे मात्र से ब्रह्माण्ड को अखण्ड करने का बताया है।

आ वाणी कही में विगते, ते विस्तरसे विवेक।
मारा साथने कही में छानी, पण ए छे घणूं विसेक।। ८१ ।।

इस वाणी को मैंने खुलासा करके बता दिया है। आगे उसका बड़ा विस्तार होगा। मैंने यह केवल सुन्दरसाथ के वास्ते कही है, परन्तु इसका विशेष रूप से फैलाव होगा।

संसार सहुना अंगमां, मारी बुधनों करूं प्रवेस।
असत सर्वे सत करूं, मारी जागणी ने आवेस।। ८२ ।।

सब संसार के अंग में मेरी बुद्धि प्रवेश करेगी। तारतम का ज्ञान सबको मिलेगा, जिससे सब जीव जागनी के आवेश से अखण्ड हो जाएंगे।

बुध सरूप अछरनी, आवी अमारे पास।
ब्रह्मांड जोगमाया तणो, तेणे रुदे ग्रह्यो रास।। ८३ ।।

अक्षर की जागृत बुद्धि (असराफील) मेरे पास आएगी। उसको बताऊंगी कि जैसे योगमाया में पहले ब्रज और रास को अखण्ड किया है, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड करना है।

मारा धणी तणे चरणे हुती, आटला ते दाडा गोप।
वचन जे सुकजी तणा, ते केम करूं हूं लोप।। ८४ ।।

इतने दिन तक यह जागृत बुद्धि (परा शक्ति) हमारे धनी के चरणों में छिपी पड़ी थी, पर शुकदेवजी के जो वचन हैं उनको मैं कैसे छिपाऊं?

वृज रास मांहें अमें रमूं, बुध हुती रासमां रंग।
हवे आवी प्रगटी, आंही उदर मारे संग।। ८५ ।।

ब्रज और रास में हम खेले, परन्तु जागृत बुद्धि रास के आनन्द में थी। वही जागृत बुद्धि मेरे अन्दर आकर प्रकट हुई है।

इंद्रावती वाला संगे, उदर फल उतपन।
एक बुध मोटी अवतरी, बीजी ते जोत तारतम।। ८६ ।।

श्री इन्द्रावतीजी कहती हैं मुझे श्री राजजी का साथ मिलने से एक जागृत बुद्धि तथा दूसरा तारतम—यह दो फल मेरे पेट से पैदा हुए।

बंने सरूप थया प्रगट, लई मांहोंमांहें बाथ।
एक तारतम बीजी बुध, ए जोसे सनमुख साथ।। ८७ ।।

दोनों स्वरूप परस्पर लिपटे हुए प्रकट हुए। एक तारतम, दूसरी जागृत बुद्धि, जिसको सुन्दरसाथ साक्षात् देखेगा।

अछर केरी वासना, कह्या जे पांच रतन।
कागल लाव्यो अमतणो, सुकदेव मुनी धंन धंन।। ८८ ।।

अक्षर की वासनाओं में पांच रत्न कहे हैं। उनमें से शुकदेवजी हमारी खबर का कागज (भागवत) लेकर आए हैं, इसलिए शुकदेवजी को धन्य कहा है।

विष्णु मन रामत लई, ऊभो ते बंने पार।
भली भांत भगवान भेला, सनकादिक थंभ चार।। ८९ ।।

अक्षर के पांच रत्नों में दूसरे विष्णु भगवान हैं, जो नीचे शेषशायी नारायण तथा ऊपर आदि नारायण के रूप में ब्रह्माण्ड को लेकर खड़े हैं। तीसरे इनके साथ में ब्रह्माण्ड के चार थंभे (स्तम्भ) सनकादिक ऋषि हैं।

महादेवजीऐं वृजलीला, ग्रह्यो अखंड ब्रह्मांड।
अछर चित चोकस थयो, ए एम कहावे अखंड।। ९० ।।

महादेवजी चौथे हैं, जिन्होंने अखण्ड ब्रज का दर्शन किया। जो अक्षर के चित्त में अखण्ड हैं।

कबीर साखज पूरवा, ल्याव्यो ते वचन विसाल।
प्रगट पांचे ए थया, बीजा सागर आडी पाल।। ९१ ।।

पांचवें कबीरजी हैं, जिनकी वाणी हमारी साक्षी देती है। यह अक्षर तक का ज्ञान लेकर आए हैं। यह पांचों वासनाएं अक्षर की हैं और अक्षर तक का ही ज्ञान देती हैं। दूसरे सबके लिए निराकार का पर्दा लगा हुआ है।

अमें बुधने प्रकासी करी, जासूं अमारे घर।
वैकुंठ विष्णु ने जगवसे, बुध देसे सर्वे खबर।। ९२ ।।

अब हम सबको जागृत बुद्धि से पहचान करा कर अपने घर परमधाम जाएंगे। तब जागृत बुद्धि विष्णु भगवान को जगाएगी। जो सारे संसार को खबर देंगे जीवों के अन्दर नारद (विष्णु का मन) है जो सबके अन्दर बैठा है। तारतम की पहचान सबको तुरन्त दे देंगे।

खबर देसे भली भांतें, विष्णु जागसे तत्काल।
आवसे आणे नेत्रे निद्रा, त्यारे प्रले थासे पंपाल।। ९३ ।।

तारतम मिलते ही भगवान विष्णु तुरन्त जाग जाएंगे और तब सारे ब्रह्माण्ड को अपनी नजर में लेकर सबका प्रलय कर देंगे।

छर रामत इछायें करे, अछर आपो आप।
एहेनी वासना पोहोंचसे इहां लगे, ए सत मंडल साख्यात।। ९४ ।।

अक्षर ब्रह्म, जो क्षर के ब्रह्माण्ड को अपनी इच्छा से बनाते मिटाते हैं, की पांचों वासनाएं अक्षर तक पहुंचती हैं, जो अखण्ड हैं।

वासनाओं पांचे वल्या पछी, भेली बुध वसेक विचार।
अछर आंख उघाडसे, उपजसे हरख अपार।। ९५ ।।

पांचों वासनाओं के वापस जाने के बाद फिर जागृत बुद्धि से अक्षर विचार करेंगे और अक्षर धाम में जागेंगे तो अपार खुशी होगी।

त्यारे लीला त्रणे थिर थासे, अखंड एणी प्रकार।
निमख एक न विसरे, रुदे रेहेसे सरूपने सार।। ९६ ।।

तब तीनों लीलाएं इस प्रकार से अखण्ड हो जाएंगी। (दो तो हो चुकी हैं, तीसरी भी अखण्ड होगी) अक्षर के हृदय में स्वरूपों की लीला एक क्षण भी भूलेगी नहीं।

उत्तम कहूं वली ए मधे, जिहां तारतमनो विस्तार।
वासनाओ पांचे बुधे करी, साख पूरसे संसार।। ९७ ।।

इन तीनों में से यह तीसरे ब्रह्माण्ड की लीला उत्तम होगी। जहां तारतम ज्ञान का विस्तार होगा। जहां पांच वासनाएं जागृत बुद्धि का ज्ञान लेकर सारे संसार को ज्ञान देंगी, जो हमारी गवाही देंगी।

मारी संगते एम सुधरी, बुध मोटी थई भगवान।
सत सरूप जे अक्षर, मारे संग पामी ठाम।। ९८ ।।

अक्षर भगवान की बुद्धि हमारा साथ करने से सुधर जाएगी (उसे भी परमधाम की वाहिदत और खिलवत का ज्ञान हो जाएगा) और अक्षर के सत स्वरूप में हमारे जीवों के साथ ही अखण्ड हो जाएगी।

मारा गुण अंग सहु ऊभा थासे, अरचासे आकार।
बुध वासना जगवसे, तेणे सांभरसे संसार।। ९९ ।।

अक्षर ब्रह्म के सत स्वरूप के अन्दर जहां पहली बहिश्त होगी, हमारे गुण, अंग, इन्द्रिय सहित हमारे योगमाया के आकार खड़े हो जाएंगे, जहां उनकी पूजा होगी। हमारी आत्माएं जागृत होकर परमधाम जाएंगी, जिसको सारा संसार सुनेगा।

बुध तारतम लई करी, पसरी वैराटने अंग।
अछरने एणी विधे, रुदे चढ्यो अधिको रंग।। १०० ।।

जागृत बुद्धि तारतम लेकर सारे संसार में फैल जाएगी, जिससे ब्रह्माण्ड अखण्ड हो जाएगा। अक्षर को और अधिक आनन्द आएगा।

आंहीं तेजनो अंबार पूरा, जोत क्यांहें न झलाय।
एणे प्रकासे सहु प्रगट कीधूं, जिहांथी उतपन ब्रह्मांड थाय।।१०१।।

योगमाया के ब्रह्माण्ड में इस लीला के प्रकाश का तेज इतना अपार होगा कि जिसकी किरणों का तेज सहन नहीं होगा। इस ज्ञान के प्रकाश से सबको पता लगेगा कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कहां से होती है?

जागतां ब्रह्मांड उपजे, पाओ पलके अपार।
ते सर्वे अमें जोइया, आंहीं थकी आवार।। १०२ ।।

अक्षर की जागृत अवस्था के पाव (चौथाई) पल में अनेक ब्रह्माण्ड कैसे बनते और मिटते हैं? यह सब हमने यहां से देखा।

ए लीला छे अति भली, द्रष्टे उपजे ब्रह्मांड।
ए रमे ते रामत नित नवी, एहेनी इछा छे अखंड।। १०३ ।।

जिन अक्षर ब्रह्म के देखने मात्र से अनेक ब्रह्माण्ड पैदा होते हैं, उनकी यह लीला बड़ी अच्छी है। वह अपनी इच्छा मात्र से अव्याकृत और सबलिक के द्वारा, जो अखण्ड हैं, नित्य नई लीला करते हैं।

ए मंडल अखंड सदा, अछर श्री भगवान।
प्रगट दीसे पाधरा, आंहीं थकी सहु ठाम।। १०४ ।।

यह सारा योगमाया का ब्रह्माण्ड जो अक्षर ब्रह्म का मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार का स्वरूप सदा अखण्ड है, यहां से सभी ठिकाने साफ दिखाई देते हैं। (योगमाया के ब्रह्माण्ड में जागृत बुद्धि के ज्ञान हो जाने से वहां पर सबको क्षर, अक्षर और अक्षरातीत की पहचान होगी जो पहले नहीं थी)।

मोह उपन्यो इहां थकी, जे सुंन निराकार।
पल मेली ब्रह्मांड कीधो, कारज कारण सार।। १०५ ।।

मोह तत्व जिसे शून्य और निराकार भी कहते हैं, उसकी उत्पत्ति अव्याकृत से होती है। एक पल के अन्दर कार्य कारण से ब्रह्माण्ड बनाते हैं।

ब्रह्मांड बंने अखंड कीधां, तेमां लीला अमारी।
ब्रह्मांड त्रीजो अखंड करवो, ए लीला अति भारी।। १०६ ।।

दोनों ब्रह्माण्ड ब्रज और रास, जो अखण्ड हो गए हैं, उनमें लीला हमारी है। यह तीसरा ब्रह्माण्ड भी अखण्ड करना है। इसकी लीला बहुत भारी है।

ब्रह्मांड दसो दस प्रगट कीधां, अंतराय नहीं रती रेख।
सत वासना असत जीव, सहु विध कही विवेक।। १०७ ।।

हे साथजी! हमने पूर्ण रूप से ब्रह्माण्ड की सब जानकारी दे दी है और कुछ भी आपसे छिपाया नहीं है। परमधाम की आत्मा अखण्ड है तथा संसार के जीव मिटने वाले हैं। इस सबका वर्णन हर तरह बताया है।

मोह अग्नान भरमना, करम काल ने सुंन।
ए नाम सहु निद्रातणा, निराकार निरगुण।। १०८ ।।

मोह, अज्ञान, भ्रम, कर्म, काल, शून्य, निराकार तथा निरगुण यह सब नाम नींद के ही हैं।

एटला ते लगे मन पोहोंचे, बुध तुरिया वचन।
उनमान आगल कही करी, वली पडे ते मांहें सुंन।। १०९ ।।

यहां तक ही मन पहुंचता है तथा संसार की बुद्धि, चित्त और वचन यहीं तक पहुंचते हैं। इसके आगे अटकल से कहकर फिर मोह में ही पड़ जाते हैं।

सुपनना जे जीव पोते, ते निद्रा ओलाडे केम।
वासना निद्रा उलंघी, अछर पामे एम।। ११० ।।

जो जीव सपने से ही बने हैं, वह नींद निराकार को उलंघ (पार) कर आगे नहीं जा सकते, परन्तु आत्माएं नींद उलंघ करके अखण्ड में जाती हैं।

एणे द्रष्टांते प्रीछजो, वासना जीवनी विगत।
असत जीव न बोले निद्रा, निद्रा बोले वासना सत।। १११ ।।

आत्मा और जीव की हकीकत इस दृष्टान्त से समझना। जीव असत है और निराकार के पार नहीं जा सकता है। आत्माएं अखण्ड हैं, सत हैं, जो निराकार के पार जाती हैं।

जुओ सुपने कई वढी मरतां, आयस न आवे आप।
मारतां देखे ज्यारे आपने, त्यारे धुजे अंग साख्यात।। ११२ ।।

देखो, सपने में कई जीव लड़ते मरते हैं, किन्तु किसी को दुःख नहीं होता। होश नहीं आता। जब सपने में अपने ऊपर वार होता देखते हैं तो कांपकर जागृत हो जाते हैं।

वासना उतपन अंगथी, जीव निद्रा उतपत।
एणी विधे घर कोई न मूके, वासना जीवनी विगत।। ११३ ।।

आत्माओं की परात्म हैं जिनसे उनकी उत्पत्ति है। जीव स्वप्न से पैदा होते हैं। इस तरह से अपने घर को कोई नहीं छोड़ता। यही आत्मा और जीव की हकीकत है।

चौदेलोक चारे गमां, सहु सतनों सुपन।
एणे द्रष्टांते प्रीछजो, विचारी वासना मन।। ११४ ।।

चौदह लोकों का ब्रह्माण्ड चारों तरफ से सत के सपने का रूप है, इस दृष्टान्त से समझना। आत्मा और जीव के भेद समझना।

अग्नान सत सरूपने, तमे केहेसो थाय केम।
ते विध कहूं सर्वे तमने, उपनूं छे एम।। ११५ ।।

सुन्दरसाथजी! तुम पूछोगे सत स्वरूप का अज्ञान (सपना) कैसे हुआ। उसकी हकीकत भी सबको बताती हूं कि यह किस तरह से उत्पन्न हुआ है।

एक तीर ताणी मूकिए, तेणे पत्र कई वेधाय।
ते पत्र सर्वे वेधतां, वार पाओ पल न थाय।। ११६ ।।

एक तीर के मारने से कई पत्तों में छेद हो जाता है। उन सब पत्तों के छेदने में एक पाव (चौथाई) पल का भी समय नहीं लगता।

पण पेहेलूं पत्र एक वेधीने, तो बीजा लगे जाय।
एमां ब्रह्मांड कई उपजे, वार एटली पण न केहेवाय।। ११७ ।।

परन्तु एक पत्ते से दूसरे पत्ते में तीर के जाने में जितना समय लगता है, उतने समय से भी कम समय में कई ब्रह्माण्ड बनकर मिट जाते हैं।

तो आ वार एकनी सी कहूं, एमां सूं थयूं सुपन।
पण सत भोमनूं असतमां, द्रष्टांत नहीं कोई अन।। ११८ ।।

तो इस बार एक ब्रह्माण्ड की क्या कहूं? इसमें सपना कैसे हो गया? पर अखण्ड का झूठे संसार में दूसरा कोई दृष्टान्त नहीं है।

जोत बुध बंने अम कने, अमे प्रगट कीधां प्रकास।
पूरूं आस अछरनी, मारू सुख देखाडी साख्यात।। ११९ ।।

तारतम और जागृत बुद्धि दोनों हमारे पास हैं। जिसका हमने वर्णन किया है। मैं अपने अखण्ड सुखों को दिखाकर अक्षर ब्रह्म की इच्छा की पूर्ति करती हूं।

अजवालूं अखंड थयूं, हवे किरणा क्यांहें न झलाय।
जोत चाली पोते घर भणी, बुध अछर मांहें समाय।। १२० ।।

अब यह सब ज्ञान अखण्ड हो गया और इसकी किरणें किसी से रुकेंगी नहीं। इस ज्ञान का प्रकाश आत्माओं को घर की तरफ ले जाता है। अक्षर की बुद्धि अक्षर में समा जाती है।

हवे जिहां थकी जोत उपनी, जुओ तेह तणो प्रकार।
अछरातीत मारा घर थया, इहां तेजना अंबार।। १२१ ।।

श्री इन्द्रावतीजी कहती हैं कि जहां से तारतम ज्ञान की ज्योति आई है, उसकी हकीकत देखो। अक्षर के पार अक्षरातीत हमारा है। जहां तेज ही तेज का अम्बार (पुंज) है।

जोत सर्वे भेली थई, कांई आपने घर बार।
मारा ते घरनी वातडी, केम कहूं मारा आधार।।१२२।।

अपने घर की ही सब बातें तारतम ज्ञान में मिल गई हैं। अब उस घर की बातें, हे मेरे सुन्दरसाथजी! मैं कैसे कहूं?

अमे घर आंहींथी जोइया, आंही अजवालूं अपार।
विविध पेरे एणे तारतमें, देखाड्या दरबार।।१२३।।

मैंने यहां बैठे अपने घर को देखा। यहीं पर बेशुमार (अनन्त) उजाला मिला। तारतम ज्ञान ने सब तरह से अखण्ड परमधाम को दिखाया।

अमे विलास कीधां घर मधे, वालासों अनेक प्रकार।
मूने दीधी निध दया करी, श्री देवचन्दजी दातार।।१२४।।

मैंने वालाजी से तरह-तरह से विलास किए। यह न्यामत श्री देवचन्द्रजी ने कृपा करके दी।

बीच वचन बे वालातणा, आ तेह तणो अजवास।
जे वाव्यूं मारे वालैए, तेणे पूरया मनोरथ साथ।।१२५।।

वालाजी के वचन का ही यह सब उजाला है। (जो देवचन्द्रजी ने तारतम दिया था)। जो बीज वालाजी ने बोया उससे सुन्दरसाथ की मनोकामना पूरी हुई।

ससि सूर कई कोट कहूं, कहूं तेज जोत प्रकास।
ए वचन सर्वे मोह लगे, अने मोहनों तो नास।।१२६।।

करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा की रोशनी की यदि बात करूं तो यह सब मोह तत्व तक ही रहती है। मोह का तो नाश हो जाता है।

हवे आणी जिभ्याए केम कहूं, मारा घर तणो विस्तार।
वचन एक पोहोंचे नहीं, मोह मांहें थयो आकार।।१२७।।

इस जबान से अपने घर (परमधाम) के ज्ञान का विस्तार कैसे करूं? एक भी वचन यहां पहुंचता नहीं, क्योंकि यह आकार माया का है, इसलिए कह रही हूं।

मोह ते जे नथी कांईए, सत असंग सदाय।
असत सतने मले नहीं, वाणी पोहोंचें न एणी अदाय।।१२८।।

मोह तत्व तो कुछ भी नहीं है। सत का भूल से ही इसका सम्बन्ध नहीं है। सत और असत, सच और झूठ मिलते नहीं। इस तरह से यहां की वाणी वहां नहीं पहुंचती।

एक अर्ध लवो पोहोंचे नहीं, मारा घर तणे दरबार।
जोगमाया लगे वचन न आवे, ते पारने वली पार।।१२९।।

यहां का एक आधा अक्षर भी हमारे घर श्री परमधाम तक नहीं पहुंचता। यहां के वचन तो बेहद (योगमाया) तक भी नहीं जाते, तो उस पार के भी पार अक्षर और अक्षरातीत तक कैसे जाएं?

हूं वचन कहूं विध विधना, पण क्यांहें न पामूं लाग।
मारा घर लगे पोहोंचे नहीं, एक लवानो कोटमों भाग।। १३० ।।

मैं तरह-तरह के वचन कहती हूं, पर कहीं भी मौका नहीं मिलता। एक शब्द का करोड़वां हिस्सा भी हमारे घर (परमधाम) तक नहीं जाता।

हूं अंगे रंगे अंगना संगे, करूं पोते पोतानी वात।
बोलतां घणूं सरमाऊं, तेणे न कहूं निध साख्यात।। १३१ ।।

श्री राजजी महाराज कहते हैं कि मैं अपनी अंगना के साथ अपने आप बातें करता हूं। बोलते हुए मुझे बड़ी शर्म लगती है, इसीलिए साक्षात् कुछ भी कह नहीं सकता, क्योंकि वहां की एक बात की तुलना यहां किससे करके कहूं?

मारा ते घरनी वातडी, नथी कह्यानो क्यांहें विश्राम।
कहूं तो जो कोई होय बीजो, गाम नाम न ठाम।। १३२ ।।

यह मेरे घर की बातें हैं। इन्हें किसी को कहीं पर कहने का ठिकाना नहीं है। यदि कोई और दूसरा गांव या वैसा नाम या ठिकाना हो, तो कहूं।

जिहां नथी कांई तिहां छे केहेवाय, ए बंने मोह ना वचन।
ए वाणी मारी मूने हंसावे, ते माटे थाऊं छूं मुन।। १३३ ।।

जहां नहीं है, वहां है कहते हैं। यह तो दोनों मोह के वचन हैं। मेरे ऐसे वचन मुझे ही हंसाते हैं। इसलिए चुप हो जाता हूं।

एटलू पण हूं तो बोलूं, जो साथने भरम नो घेन।
वचन कही विधोगते, टालूं ते दुतिया चेन।। १३४ ।।

इतना भी मुझे बोलना पड़ता है क्योंकि सुन्दरसाथ अन्धकार (माया) में डूबे पड़े हैं, इसलिए विधिवत वचन कहकर सुन्दरसाथ की दोगली बातें (द्वैत) हटा देता हूं।

इंद्रावतीसों अतंत रंगे, स्याम समागम थयो।
साथ भेलो जगववा, इंद्रावतीने में कह्यो।। १३५ ।।

श्री राजजी महाराजजी कह रहे हैं कि श्री इन्द्रावतीजी के साथ बड़े आनन्द के साथ मेरा मिलाप हुआ। सुन्दरसाथ को इकट्ठा जगाने के लिए मैंने श्री इन्द्रावतीजी को कहा है।

।। प्रकरण ।। १२ ।। चौपाई ।। ५०६ ।।

प्रकरण तथा चौपाइयों का संपूर्ण संकलन ।। प्रकरण ।। १११ ।। चौपाई ।। २७१३ ।।

।। कलस गुजराती-तौरेत सम्पूर्ण ।।